Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2348-0076**

JIFE Impact Factor – 3.21

Samajiki Sandarsh

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Krishna Kumar Singh
Professor
Department of Social Work
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith
Varanasi

Volume - XI **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2023)**

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

CONTENTS

"Samajiki Sandarsh"

➲	कवि एवम् नाटककार ''डॉ0 रामकुमार वर्मा'' ***डॉ0 विमला चमोला***	01-05
➲	भारतीय संस्कृति में महिलाओं का स्थान ***ज्ञानेन्द्र कुमार मिश्र***	06-08
➲	केशव की रसिक प्रिया पर आधारित कांगड़ा के नायिका भेद चित्रों का विशेषणात्मक अध्ययन ***मंजू गौतम***	09-15
➲	नालन्दा महाविहार – अवस्थिति एवं अवदान ***मीरा देवी***	16-20
➲	प्रारम्भिक भारतीय मुद्राओं पर राजकीय उपाधि ***अखिलेश कुमार***	21-23
➲	भारतीय संस्कृति और संगीत : एक विश्लेषण ***शालिनी सक्सेना***	24-25
➲	हिंदी सिनेमा की नायिका समाज की नारी दोनों के अंतर्द्वंद ***डॉ. मोहित मिश्रा***	26-28
➲	हनुमान् के गुण हनुमन्नाटक के परिप्रेक्ष्य में ***रोशनी सिंह***	29-32

हिंदी सिनेमा की नायिका समाज की नारी दोनों के अंतर्द्वंद

डॉ. मोहित मिश्रा*

धर्म, समाज, राजनीति, अर्थजगत, खेल, सिनेमा आदि सभी जगहों पर पुरुष का वर्चस्व रहा है। हिंदी सिनेमा में नारी और समाज में नारी की स्थिति विषय पर हिंदी सिनेमा ने काफी 'होमवर्क' किया है। आज का सिनेमा समकालीन जीवन की समस्याओं को आधार बनाकर फिल्म बनाने का कार्य कर रहा है, जिसमें बाजार, व्यापार और उपभोक्ता को स्थान दिया जाता है। स्त्रियों को केंद्र में रखकर बनने वाली फिल्में स्त्री जीवन की पीड़ा को चित्रित करती हैं, वास्तव में ये फिल्में पुरुष वर्ग की सोच पर प्रहार करती हैं। समकालीन सिनेमा ने पुरुष की कुंठा को भी फिल्मों के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया है। स्त्री केंद्रित फिल्म पुरुष वर्ग के ऊपर प्रतीकात्मक प्रहार करती प्रतीत होती हैं। इन फिल्मों के माध्यम से पुरुष वर्ग असलियत को सामने लाने का प्रयास किया जाता है, जो समाज में आसानी से दिखाई नहीं देती। हाल में आयी फिल्म द डर्टी पिक्चर समकालीन सामाजिक परिस्थितियों को उजागर करती है, जो समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति का यथार्थ प्रतीत होता है। नायिका पुरुष वर्ग की शराफत को सामने लाने के लिए कहती है, कि 'जब शराफत का चोला उतरता है, तो सबसे अधिक मजा इन शरीफों को ही आता है।' हिंदी सिनेमा में इस फिल्म को नायक के वर्चस्व को नकारते हुए नायिका के प्रभाव को उजागर करने का सफल प्रयास कहा जा सकता है। समकालीन फिल्मों में स्त्री की बगावत के साथ उसकी आजादी का बिगुल भी बज चुका है। सिनेमा में प्रारम्भिक दौर की स्त्री बहुत कुछ वैसी ही है, जैसी भारतीय परम्परा में देखने को मिलती हैं। सिनेमा में संस्कृति पर आधारित फिल्मों का भी निर्माण हुआ है, उन फिल्मों में स्त्री को पारिवारिक, सामाजिक और आदर्श के रूप में स्थापित किया गया है। प्रारंभ से ही सिनेमा ने संस्कृति के विषयों को उठाकर पर्दे के माध्यम से चित्रित किया है। फिल्मों ने नए जीवन के उल्लास भरे पलों को समेटकर पर्दे के माध्यम से जिंदगी जीने का फलसफा सिखाया है, इन्ही प्रयासों में सिनेमा ने कुछ वर्ष पहले तक स्त्री को ममता मई माँ, भावनात्मक बहन, प्यारी पत्नी के रूप में दर्शाया है, जो अपने प्राणों को भी समाप्त करने से पीछे नहीं हटती हैं। उस रूप में स्त्री रूठती हैं, टूटती है, बिखरती है और समय पड़ने पर संघर्ष भी करती है। हिंदी सिनेमा ने संस्कृति में रचने–बसने वाली नारी का चित्रण किया है। संचार के सबसे सशक्त माध्यम के तौर पर फिल्म का प्रभाव जनता पर सबसे अधिक पड़ता है। इसमें पढ़े–लिखें लोगों से लेकर गरीब जनता तक सम्मिलित होती है। फिल्म दृष्य–श्रव्य माध्यम है। हिंदी सिनेमा का प्रारंभ वैसे तो सन 1931 में आर्देषिर ईरानी निर्देशित फिल्म आलम आरा से होता है, जिसकों भारत की पहली फिल्म होने का गौरव प्राप्त है। भारत में सिनेमा 1896 में बर्म्बइ के वास्टन होटल में प्रदर्षित लूमेर भाइयों के मूक फिल्मों से होती है।

वस्तुतः हिंदी सिनेमा ने आरंभ से ही स्त्री अस्मिता के सभी पहलुओं को सूक्ष्म भावात्मक स्तर पर उठाया है। कई प्रारंभिक फिल्मों में अशुभ का विनाश और शुभ के विकास में स्त्री योगदान को दर्शाया गया है। उस समय की हिंदी फिल्मों में भारतीय मिथकों को विषयवस्तु के आधार पर प्रयोग किया गया, जो भारतीय मूल्यों, परंपराओं और आदर्श की स्थापना करती प्रतीत होती हैं। इस प्रकार की फिल्मों की लिस्ट काफी लंबी है, परंतु कुछ फिल्म उल्लेखनीय है, 'लंका दहन'(1917), श्रीकृष्ण जन्म (1918), 'कालिया मर्दन' (1919), 'सुकन्या सावित्री' (1921), 'उर्वशी' (1921), 'रत्नावली' (1922), 'सती अंजना' (1922), 'सती पद्मिनी' (1924), 'सती तारा' (1925), 'जानकी स्वयंवर' (1926), 'द्रौपदी वस्त्र हरण' (1927), 'विश्वमोहिनी' (1928), 'मालविमाग्निमित्र' (1929), 'राधाकृष्ण' (1930), 'अन्नपूर्णा' (1932), 'इंदिरा एम. ए.'(1934), 'देवदास' (1935), 'अछूत कन्या' (1936) 'आदमी' (1939), बाल योगिनी' (1936), 'दुनिया ना मानें' (1937), जैसी फिल्मों में स्त्री की पर्दे पर आदर्श छवि उभरती है। 1931 कें बाद भारतीय समाज में व्याप्त नारी जीवन की विडंबनाओं को आधार बनाकर कई फिल्में बर्नाइ गई हैं। सामाजिक समस्याओं पर आधारित फिल्मों में नारी जीवन से संबंधित जिन समस्याओं को उजागर किया गया, उनमें 'बाल विवाह', 'अनमेल विवाह', 'पर्दा प्रथा', 'अशिक्षा' आदि प्रमुख रहे।

* आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, संपर्क सूत्र–7982349547

हिंदी सिनेमा में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद परिवर्तन हुआ। फिल्मों में व्यावसायिकता को बढ़ावा मिला, उस दौर के सिनेमा में जो विषय प्रमुख होनें चाहिए वह गौण हो गए, सिनेमा से जुड़े लोगों का ध्येय सिर्फ मुनाफा कामना हो गया, उन्होंने नारी जीवन के हर पक्ष का शोषण किया। स्त्री को वस्तु के रूप में प्रस्तुत करना प्रारंभ कर दिया, जिसकी विशेषताओं और कमजोरियों का फिल्म के माध्यम से व्यावसायिक इस्तेमाल किया जा सके। स्वातंत्र्योत्तर फिल्मों में नारी जीवन की समस्याओं को विषय बनाया भी गया, तो उसे ऐसे कृत्रिम रूप में प्रस्तुत किया। फिल्मों में नारी समस्या को चित्रित किया भी गया है, तो उसमें दाम्पत्य जीवन में देह सुचिता, पतिव्रता नारी, आदर्ष नारी के गुण आदि को प्रमुखता मिली है। भारतीय फिल्मों में नायिका का स्वरूप परिवर्तित हुआ है, जिसमें रिवाल्वर रानी, इंग्लिश विंगलिश, क्वीन, द डर्टी पिक्चर आदि महत्वपूर्ण फिल्में हैं। रिवाल्वर रानी फिल्म की नायिका अपनी भाषा, व्यवहार और नेतृत्व की क्षमता के कारण पुरुष पत्रों को भी पीछे छोड़ देती है। इस फिल्म के माध्यम से नायिका के बनी–बनाई संवाद शैली को तोड़ने का प्रयास किया गया है। फिल्म की नायिका समाज के द्वारा बाँझ समझे जाने का विरोध करती है। नायिका अपने पति के अत्याचारों से लड़ती है और पति को मार देती है, इस प्रकार का साहस समाज की बनी परिपाटी में दिखाना स्त्री के कठिन कार्य है। नायिका राजनीति में भी पुरुष वर्ग से अधिक लोकप्रियता प्राप्त करती है, सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध नायिका का संघर्ष उभर कर सामने आता है। फिल्म में नायिका खुले तौर पर संबंध बनती है, जो पारंपरिक स्त्री के स्वरूप को तोड़कर उसे आधुनिक दिखाने का प्रयास प्रतीत होता है। नायिका माँ नहीं बनपाने के कारण समाज से विद्रोह करती है, परंतु जब उसे पता चलता है कि वह माँ बन सकती है तो वह उस समाज को दिखा देना चाहती है कि बाँझ नहीं है।

21वीं सदी में भी लोगों की सोच में परिवर्तन नहीं हुआ है, वह आज भी सभी कमियों का कारण स्त्री में ही देखते हैं। इस फिल्म ने समाज की एक रूढ़ि को केंद्र में रखा है, जिसके चलते आज भी कितनी स्त्रियों को सामाजिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती हैं। ऐसी स्त्रियों को घर–परिवार से लेकर राह चलते हुए भी हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसी प्रकार क्वीन फिल्म में भारतीय समाज में लड़कियों के लिए बनी सोच के अनुरूप पालने वाली लड़की का चित्रण किया गया है, जो अकेले सड़क पार नहीं कर पाती। फिल्म में नायिका अपने हनीमून के लिए अकेले जाती है, जहाँ वह अपने बाहरी और आंतरिक द्वंद्व से जूझती है। फिल्म के अंत तक नायिका की जीवन शौली में परिवर्तन देखने को मिलता है। समाज की सोच को तोड़कर नायिका भी लड़के को शादी के लिए न बोलती है। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य ही समाज में संगठन एवं व्यवस्था स्थापित करते हुए इसे प्रगति एवं गतिशीलता की दिशा में ले जाने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहा है, किन्तु पुरूष ने मनुष्य का अर्थ पुरूषत्व को मान लिया और स्त्री को इस कोटि से बहिष्कृत कर दिया। इसलिए पुरूष स्वभावतः अहंकारी हो गया और वह सामाजिक परिवेश में अपनी स्थिति सर्वोच्च स्तर पर रखने हेतु उत्सुक हो गया। यही मनोभाव पुरूष को पुरूष वर्चस्ववाद की ओर ले गया। इस फिल्म में पुरुष की उसी सोच को बदलने का प्रयास किया गया है। नायिका भी पुरुष के समान जीवन जीने की क्षमता रखती है, जिसके लिए वह जीवन–यापन के तरीकों में परिवर्तन भी कर सकती है। फिल्म पुरुष की पारंपरिक सोच को उद्घाटित करती है, जहाँ नारी के चयन का अधिकार उसके पास होता है। आज की परिस्थितियाँ परिवर्तित हुई है, जिसमें स्त्रियों का विकास हुआ है।

भारतीय फिल्मों का समाज से गहरा रिश्ता रहा है। समाज की स्थितियों का चित्रण फिल्मों में देखने को मिलता रहा है। फिल्मों में नायिका के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत किया गया है, कभी उसे कमजोर बनया तो कभी एक मजबूत महिला बनाकर प्रस्तुत किया। आज फिल्मों में नायिका सहयोगी की भूमिका तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि वह नायक के कंधे से कंधा मिलकर चलती है। नायिका को केंद्र में रखकर फिल्मों का निर्माण किया जा रहा है। सामाजिक बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ने वाली नारी को प्रमुखता मिल रही है। समाज में नारी को अपने जीवन के फैसले लेने का अधिकार मिल रहा है, तो उसमें सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सिनेमा ने समाज की रूढ़ियों को तोड़ने का कार्य किया है, जिससे समाज में भी स्त्रियों की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। आज स्त्री परिवार के फैसले से लेकर राजनीति और आर्थिक व्यय की जिम्मेदारी निभा रहीं हैं, जिसमें सिनेमा की नायिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान जीवन की समस्याओं का चित्रण सिनेमा में देखने को मिलता है। नायिका के माध्यम से समाज में स्त्री की स्थिति को मजबूत करने वाली फिल्मों का निर्माण हो रहा है। सिनेमा और समाज दोनों का संबंध बहुत गहरा है। फिल्में समाज को आईना दिखाने का कार्य करती हैं, तो समाज से फिल्मों को विषयवस्तु मिलती

है। आज सिनेमा और समाज दोनों जगहों में स्त्री की सहभागिता में वृद्धि हुई है। आधुनिक जीवन में स्त्री के महत्व को स्थापित करने में सिनेमा की कई फिल्मों का योगदान देखने को मिलता है।

सम्बन्धों का जटिल जाल होता है और इन सम्बन्धों का निर्माता स्वयं मनुष्य है। यही सर्वोच्चता के बनावटी सिंहासन पर खतरे को हर एक झूठे अहंकारवाद का शिकार व्यक्ति बर्दाश्त नहीं कर पाया, क्योंकि पुरूष स्वभावतः अहंकारी है। वह अपनी सामाजिक स्थिति को सर्वोच्चतम स्तर पर रखकर देखता है, और स्त्री को न्यूनतम स्तर पर रखना पसन्द करता है। यदि स्त्री अधिक पढ़ी लिखी, जागरूक, तर्कशील, बुद्धिमान है तो उसकी सर्वोच्चता को शायद खतरा पैदा हो जायेगा और झूठे अहंकारवाद का शिकार व्यक्ति यह सब कैसे सहन कर लेगा कि एक स्त्री की सामाजिक आर्थिक स्थिति उससे उच्च हो जाये या उसके बराबर हो। आज तक यही होता आया है और आज भी उसके भीतर यही सोलहवीं शताब्दी की ग्रंथि काम कर रही है कि स्त्री उसकी 'निजी सम्पत्ति' है, लेकिन इस सम्पत्ति की गुणवत्ता को वह कतई बढ़ाना नहीं चाहता। उसे कमजोर करके रखने में ही वह अपनी सुरक्षा समझता है। पुरूष के मन में यह भय, असुरक्षा की भावना और स्त्री को दबाकर कुचलकर नियन्त्रण में रखने की स्त्री विरोधी दृष्टि सदियों से काम कर रही है। कल का राजतंत्र का राजा अपने हरम के लिये हजारों रानियाँ जुटा सकता था और आज का प्रजातंत्र का क्लिंटन व्हाइट हाउस में मोनिका लेविंस्की से यौनाचार कर सकता है। आज का मध्य और निम्न वर्ग भी कोई अपवाद नहीं है। वह कभी सौतन, कभी सहेली, कभी कजिन, कभी क्लाइंट, कभी कुलीग, कभी कुछ और बहाने बनाकर औरत के दिल में लगातार छेद करता आया है। समाज में नारी की निरीह स्थिति में बदलाव आया है और वह अबला से सबला बनने की तरफ अग्रसर हुई है, वैसे–वैसे वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत भी हुई है। परिणामस्वरूप पुरूष प्रधान समाज के बंधनों के खिलाफ उसने विद्रोह किया है। स्त्री के क्रांतिवीर तेवरों से परिवार की बुनियादें हिल गयी हैं और पारिवारिक विघटन भिन्न–भिन रूपों में समाज में पसरता जा रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि पुरूष का परम्परागत मध्ययुगीन मानस स्त्री के मौलिक अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता। वह उसे दबाना चाहता है और स्त्री अपनी गुलाम मानसिकता वाली सती–साध्वी, प्रेयसी या पति–परमेश्वरी छवि को तोड़कर अपना स्वतंत्र वजूद बनाना चाहती है। सामंती समाज में स्त्री माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका, दासी आदि के रूप में थी–उसका अपना अलग वजूद नहीं था। आधुनिकता और बौद्धिकता के कारण वह अपने निजी स्वरूप और अपनी भावनों एवं इच्छाओं के प्रति सचेत हुई है। इस सजगता से उसकी आकांक्षाओं एवं पुरूष के वर्चस्ववादी अहं में टकराहट हुई है और यहीं से उनके सम्बन्धों में दरार पड़नी शुरू हो गयी है। अभी भी पुरूष स्त्री में परम्परागत कुललक्ष्मी/कुलवधू वाले स्वरूप को ही ढूँढता है, वह उसी का आकांक्षी है। स्त्री का आधुनिक होना उसे बर्दाश्त नहीं है, ऐसी स्त्री को वह कुलटा और परिवार तोड़ने वाली आदि विशेषणों से नवाजने लगता है तथा उस पर चरित्रहीनता और स्वैराचार का आरोप लगाना शुरू कर देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, *संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध*, राजकमल प्रकाशन, वर्ष–2008
2. अनामिका, *स्त्री विमर्श की उत्तर–गाथा*, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2012
3. अनामिका, *स्त्रीत्व का मानचित्र*, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2001
4. कस्तवार, रेखा, *स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2006
5. गुप्ता, रमणिका, *स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास*, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2012
6. वर्मा, अर्चना, *अस्मिता–विमर्श का स्त्री–स्वर*, मेधा बुक्स, दिल्ली, वर्ष–2008